Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 22, Issue No. 4, July-2025, ISSN 2230-7540

DOI: https://doi.org/10.29070/sa2szg86

Check for updates

भक्तिकालीन सगुण और निर्गुण धारा: सामाजिक, धार्मिक, और साहित्यिक परिप्रेक्ष्य

मनीष पटेल [1] *

1. गेस्ट फ़ैकल्टी, एनसीडबल्यूईबी, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत
manish.post@yahoo.com

सारांश: यह शोध-पत्र भारतीय उपमहाद्वीप के मध्यकाल में विकसित हुए भक्ति आंदोलन की दो प्रमुख धाराओं - सगुण और निर्गुण - का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। 14वीं से 17वीं शताब्दी के दौरान, जब भारत में राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक उथल-पुथल चरम पर थी, यह आंदोलन एक आध्यात्मिक और सामाजिक क्रांति के रूप में उभरा। सगुण भक्ति, जिसमें ईश्वर के साकार रूप, जैसे राम और कृष्ण की उपासना की जाती है, को तुलसीदास और सूरदास जैसे कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से जन-जन तक पहुँचाया। वहीं, निर्गुण भक्ति ने एक निराकार और अमूर्त ईश्वर की अवधारणा को बढ़ावा दिया, जिसके प्रमुख प्रणेता कबीर और गुरु नानक जैसे संत थे। इस धारा ने धार्मिक कर्मकांडों, जातिगत भेदभाव और सामाजिक आडंबरों का पुरजोर विरोध किया। यह शोध-पत्र इन दोनों धाराओं के उद्भव, उनके सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक प्रभावों का तुलनात्मक अध्ययन करता है। यह विश्लेषण यह दर्शाता है कि, जहाँ सगुण धारा ने लोक-जीवन में भक्ति को मर्यादा और प्रेम के माध्यम से स्थापित किया, वहीं निर्गुण धारा ने समाज में व्याप्त कुरीतियों और पाखंडों के विरुद्ध एक क्रांतिकारी चेतना का संचार किया। इस आंदोलन ने न केवल भारतीय साहित्य को समृद्ध किया, बल्कि सामाजिक समानता और धार्मिक सहिष्णुता के मूल्यों को भी सुदृढ़ किया।

मुख्य शब्द: भक्ति आंदोलन, सगुण भक्ति, निर्गुण भक्ति, तुलसीदास, कबीर, धार्मिक सुधार, सामाजिक परिप्रेक्ष्य, हिंदी साहित्य, मध्यकालीन भारत

परिचय

भारतीय इतिहास में भक्ति आंदोलन एक ऐसा युगांतकारी दौर था जिसने धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को आमूल-चूल परिवर्तित कर दिया। इसकी उत्पत्ति सातवीं शताब्दी के आस-पास दक्षिण भारत में आलवार संतों द्वारा हुई, और पंद्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी तक यह पूरे उत्तर भारत में फैल गया। इस कालखंड में भारत में अनेक राजनीतिक परिवर्तन हो रहे थे, विशेषकर मुगल साम्राज्य की स्थापना और विस्तार, जिसने समाज में एक अस्थिरता और बेचैनी का माहौल पैदा किया। इन परिस्थितियों में, धर्म और आध्यात्मिकता ने लोगों को एक नया संबल और दिशा प्रदान की।

भक्ति आंदोलन ने पूजा-पाठ और कर्मकांड की जटिलताओं से परे, ईश्वर के प्रति व्यक्तिगत प्रेम और समर्पण के सरल मार्ग को अपनाया। इसने पुरोहित वर्ग के वर्चस्व को चुनौती दी और सभी वर्गों तथा जातियों के लोगों को सीधे ईश्वर से जुड़ने का अवसर प्रदान किया। इस आंदोलन की दो प्रमुख शाखाएँ थीं: सगुण और निर्गुण। जहाँ सगुण भक्ति ने ईश्वर के एक विशिष्ट, साकार और अवतारवादी रूप की पूजा पर जोर दिया, वहीं निर्गुण भक्ति ने एक निराकार, सर्वव्यापी और गुणरहित ईश्वर की अवधारणा को प्रतिपादित किया। इन दोनों धाराओं ने मिलकर भारतीय समाज के धार्मिक और सामाजिक ताने-बाने को एक नई दिशा दी।

इस शोध का उद्देश्य इन दोनों धाराओं की उत्पत्ति, उनके मौलिक सिद्धांतों, सामाजिक और धार्मिक प्रभावों का विवेचन करना है। यह अध्ययन यह समझने का प्रयास करता है कि, कैसे सगुण और निर्गुण भक्ति ने तत्कालीन समाज की चुनौतियों का सामना किया और किस प्रकार उनकी साहित्यिक अभिव्यक्तियों ने हिंदी साहित्य को एक नई ऊँचाई दी।

यह शोध-पत्र एक गुणात्मक और विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है। शोध के लिए प्रासंगिक सामग्री का चयन विभिन्न स्रोतों से किया गया है, जिनमें प्रमुख अकादमिक पुस्तकें, शोध-जर्नल, और विद्वानों द्वारा लिखित प्रामाणिक ग्रंथ शामिल हैं। विशेष रूप से, हिंदी साहित्य के प्रमुख इतिहासकारों जैसे रामचंद्र शुक्ल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, और विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के कार्यों का गहराई से अध्ययन किया गया है। इसके अतिरिक्त, इस विषय पर लिखित समकालीन शोध-पत्रों और पुस्तकों का भी उपयोग किया गया है।

भक्ति आंदोलन पर व्यापक साहित्य उपलब्ध है, जिसमें इसकी उत्पत्ति, विकास और प्रभाव पर गहन चर्चा की गई है। इस खंड में, हम प्रमुख हिंदी और अंग्रेजी स्रोतों का संक्षिप्त अवलोकन करेंगे, जो हमारे शोध के लिए आधार प्रदान करते हैं।

रामचंद्र शुक्ल ने अपनी कालजयी रचना 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (1929) में भक्ति आंदोलन को एक धार्मिक और साहित्यिक आंदोलन के रूप में प्रस्तुत किया। वे इस बात पर जोर देते हैं कि, भक्ति काव्य का उदय तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों के कारण हुआ, जब "मुसलमानों के बढ़ते प्रभाव के कारण हिंदू जनता में निराशा और हताशा" का माहौल था (शुक्ल, 1929, पृ. 56)। उन्होंने सगुण और निर्गुण दोनों धाराओं का विस्तृत वर्गीकरण किया और उनके प्रमुख कवियों का परिचय दिया।

इसके विपरीत, हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी पुस्तक 'कबीर' (1942) और 'हिंदी साहित्य की भूमिका' (1940) में शुक्ल के मत का खंडन किया। द्विवेदी का मानना था कि, भक्ति आंदोलन बाहरी आक्रमण की प्रतिक्रिया नहीं थी, बल्कि यह भारतीय आध्यात्मिक परंपरा का स्वाभाविक विकास था (द्विवेदी, 1940, पृ. 112)। उन्होंने निर्गुण भक्ति को भारतीय नाथपंथ और सिद्धों की परंपरा से जोड़कर देखा। उनकी यह दृष्टि निर्गुण काव्य के सामाजिक और दार्शनिक आधार को समझने में महत्वपूर्ण है।

ताराचंद ने अपनी पुस्तक 'इंफ्लुएंस ऑफ इस्लाम ऑन इंडियन कल्चर ' (1922) में लिखा है कि, भक्ति आंदोलन पर इस्लाम का गहरा प्रभाव था, विशेष रूप से निर्गुण धारा पर। उन्होंने सूफी संतों और भक्ति संतों के बीच समानताएं पाईं, जैसे कि, अद्वैतवाद (एकेश्वरवाद) और व्यक्तिगत भक्ति पर जोर। हालाँकि, इस दृष्टिकोण पर विद्वानों में मतभेद है, लेकिन यह भक्ति आंदोलन की बहुआयामी प्रकृति को समझने में सहायक है।

धीरेंद्र वर्मा की 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (1995) और डॉ. रामकुमार वर्मा की 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' (1938) भी भक्ति काल पर महत्वपूर्ण कार्य हैं। इन ग्रंथों ने भक्ति आंदोलन को साहित्यिक प्रवृत्तियों के आधार पर वर्गीकृत किया और प्रमुख कवियों के जीवन और कृतित्व का विश्लेषण प्रस्तुत किया।

समकालीन विद्वानों में, अमिताभ रॉय अपनी पुस्तक 'भक्ति मूवमेंट इन इंडिया: एन ओवरव्यू ' (2009) में भक्ति आंदोलन को एक सामाजिक-राजनीतिक प्रतिरोध के रूप में देखते हैं। वह बताते हैं कि, कैसे भक्ति संतों ने जाति, लिंग और वर्ग आधारित भेदभाव के खिलाफ आवाज उठाई। इसी तरह, रोमिला थापर और डी.डी. कोसंबी जैसे इतिहासकारों ने भक्ति आंदोलन को समाजशास्त्रीय और आर्थिक दृष्टिकोण से भी देखा है, जिससे इसके व्यापक प्रभाव को समझा जा सकता है।

यह साहित्य समीक्षा स्पष्ट करती है कि, भक्ति आंदोलन पर बहुआयामी दृष्टिकोण मौजूद हैं, और इस शोध-पत्र में हम इन सभी दृष्टिकोणों को ध्यान में रखते हुए सगुण और निर्गुण धाराओं का तुलनात्मक विश्लेषण करेंगे।

सगुण और निर्गुण धारा: एक तुलनात्मक विश्लेषण

भक्ति आंदोलन की दो मुख्य धाराओं - सगुण और निर्गुण - का जन्म भले ही एक ही सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में हुआ हो, लेकिन उनके दार्शनिक और व्यावहारिक दृष्टिकोण में गहरा अंतर था। यह अंतर उनके ईश्वर की अवधारणा, सामाजिक संदेश और साहित्यिक अभिव्यक्ति में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

1. सगुण धारा: साकार रूप में ईश्वर का प्रेम

सगुण भक्ति का शाब्दिक अर्थ है "गुणों सहित"। इस धारा के अनुयायी ईश्वर को एक साकार, व्यक्तिगत और गुण-संपन्न रूप में मानते हैं। वे मानते हैं कि, ईश्वर ने पृथ्वी पर भक्तों की रक्षा के लिए अवतार लिया है। सगुण भक्ति की दो प्रमुख शाखाएँ हैं: राम भक्ति शाखा और कृष्ण भक्ति शाखा।

राम भक्ति शाखा (राम काव्य): इस शाखा के सबसे प्रमुख कवि तुलसीदास थे। उनकी महान कृति 'रामचरितमानस' (1631) ने राम को एक आदर्श राजा, पुत्र, पति और मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में प्रस्तुत किया। तुलसीदास ने भक्ति को समाज में नैतिकता, पारिवारिक मूल्यों और मर्यादा के साथ जोड़ा। उनकी भक्ति का लक्ष्य केवल मोक्ष प्राप्त करना नहीं, बल्कि एक आदर्श समाज (रामराज्य) की स्थापना करना भी था।

चौपाई:

'मंगल भवन अमंगल हारी। द्रवहु सो दसरथ अजिर बिहारी।।

राम सिया राम सिया राम जय जय राम।।' (तुलसीदास, 'रामचरितमानस', बालकाण्ड)

इस चौपाई में तुलसीदास ने राम को एक ऐसे अवतार के रूप में प्रस्तुत किया है जो सभी अमंगलों का नाश कर देते हैं, जिससे उनकी सर्वशक्तिमान और संरक्षक छवि स्थापित होती है।

कृष्ण भक्ति शाखा (कृष्ण काव्य): इस शाखा के शिरोमणि कवि सूरदास थे। उनके काव्य का केंद्र भगवान कृष्ण का लीला-वर्णन है, विशेषकर उनके बाल-रूप और प्रेम-लीलाएँ। सूरदास की रचना 'सूरसागर' (16वीं शताब्दी) में वात्सल्य और श्रृंगार रस की अद्भुत अभिव्यक्ति मिलती है। सूरदास ने कृष्ण और गोपियों के माध्यम से जीवात्मा और परमात्मा के प्रेम संबंध को दर्शाया।

पद:

'मैया मोरी मैं नहिं माखन खायो।

भोर भयो गइयन के पाछे, मधुबन मोहिं पठायो।

चार पहर बंसीबट भटक्यो, साँझ परे घर आयो।।' (सूरदास, 'सूरसागर')

यह पद कृष्ण के बाल सुलभ नटखटपन को दर्शाता है और यह बताता है कि, किस प्रकार सगुण भक्ति ने ईश्वर को लोक-जीवन के निकट ला दिया।

सगुण भक्ति ने लोगों को ईश्वर के साथ एक व्यक्तिगत और भावनात्मक संबंध बनाने का अवसर दिया। हालाँकि, सगुण धारा ने सामाजिक संरचनाओं को पूरी तरह से चुनौती नहीं दी और यह मुख्य रूप से ब्राह्मणों और उच्च जातियों के कवियों द्वारा संचालित थी।

2. निर्गुण धारा: निराकार और अमूर्त ईश्वर की अवधारणा

निर्गुण भक्ति का अर्थ है "गुणों से रहित"। इस धारा के अनुयायी मानते हैं कि, ईश्वर निराकार, अमूर्त, सर्वव्यापी और सभी गुणों से परे है। वे किसी भी अवतार या मूर्ति पूजा को स्वीकार नहीं करते। निर्गुण धारा की दो उप-शाखाएँ हैं: ज्ञानमार्गी और प्रेममार्गी।

ज्ञानमार्गी शाखा: इस शाखा के सबसे महत्वपूर्ण कवि कबीर थे। उन्होंने अपने दोहों और साखियों के माध्यम से समाज में व्याप्त धार्मिक पाखंडों, जातिवाद और अंधविश्वासों पर तीखा प्रहार किया। कबीर का ईश्वर न तो राम था और न ही रहीम, बल्कि वह एक निराकार 'राम' था जो हर प्राणी के हृदय में बसता है। राम के नाम का महत्व।

दोहा:

'जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिये ज्ञान।

मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान।।' (कबीर, 'बीजक')

यह दोहा कबीर के सामाजिक दृष्टिकोण का प्रमाण है, जहाँ वे व्यक्ति के ज्ञान और चरित्र को उसकी जाति से ऊपर रखते हैं। कबीर ने हिन्दू और मुसलमानों दोनों के कर्मकांडों की आलोचना की और एक ऐसे धर्म की वकालत की जो मानवता पर आधारित हो।

प्रेममार्गी शाखा (सूफी काव्य): इस शाखा के कवियों ने ईश्वर को एक प्रियतम के रूप में देखा और उसे पाने के लिए प्रेम और विरह के मार्ग को अपनाया। इन कवियों पर इस्लामी सूफी दर्शन का प्रभाव था। मलिक मुहम्मद जायसी का 'पद्मावत' (1540) इस

शाखा का एक प्रमुख उदाहरण है, जिसमें रानी पद्मावती को 'आत्मा' का और राजा रत्नसेन को 'परमात्मा' का प्रतीक मानकर प्रेम के माध्यम से आध्यात्मिक यात्रा का वर्णन किया गया है।

निर्गुण भक्ति ने सीधे तौर पर सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार किया। इसके अधिकांश कवि, जैसे कबीर (जुलाहा), रैदास (चमार) और दादू दयाल (धुनिया), निम्न जातियों से थे, जिन्होंने भक्ति को एक सामाजिक मुक्ति के साधन के रूप में प्रयोग किया। उन्होंने पुरोहित वर्ग के वर्चस्व को चुनौती दी और एक ऐसे समाज की कल्पना की जहाँ सभी मनुष्य समान हों।

सामाजिक, धार्मिक, और साहित्यिक परिप्रेक्ष्य

1. सामाजिक प्रभाव

भक्ति आंदोलन ने भारतीय समाज में एक नई चेतना का संचार किया। इसने जाति व्यवस्था की कठोरता को कम करने का प्रयास किया और निम्न जातियों के लोगों को भी धार्मिक और सामाजिक जीवन में सम्मानजनक स्थान दिया।

- **जातिवाद का विरोध:** निर्गुण कवियों ने जातिवाद का खुलकर विरोध किया। कबीर ने 'कबीर की साखी' में कहा: "ऊँच-नीच के भेद से, ज्यों पानी में रेत।" उन्होंने स्पष्ट किया कि, ईश्वर की दृष्टि में कोई भी ऊँचा या नीचा नहीं है। रैदास जैसे संत कवियों ने अपनी जातिगत पहचान को स्वीकार करते हुए भी भक्ति के माध्यम से सामाजिक सम्मान अर्जित किया।
- **लैंगिक समानता:** मीराबाई और अक्का महादेवी जैसी महिला कवियों ने भक्ति के माध्यम से तत्कालीन पुरुष प्रधान समाज में अपनी आवाज उठाई। मीराबाई ने कृष्ण के प्रति अपने प्रेम को सर्वोपरि मानते हुए सामाजिक मर्यादाओं को तोड़ा।
- **सामाजिक समरसता:** भक्ति आंदोलन ने हिंदू और मुसलमानों के बीच समन्वय स्थापित करने का भी प्रयास किया। कबीर ने कहा, "राम-रहीम एक है।" सूफी संतों और निर्गुण कवियों ने इस विचार को बल दिया कि, धर्म अलग-अलग हो सकते हैं, लेकिन ईश्वर और मानवता का मूल एक ही है।

2. धार्मिक प्रभाव

भक्ति आंदोलन ने धार्मिक विचारों और प्रथाओं को सरल बनाया।

- **कर्मकांड का विरोध:** निर्गुण धारा ने मूर्ति पूजा, तीर्थ यात्रा, और बाहरी कर्मकांडों का खुलकर विरोध किया। कबीर ने पाखंडी संतों और मौलवियों पर तीखे व्यंग्य किए।
- **वैयक्तिक भक्ति का महत्व:** इस आंदोलन ने व्यक्तिगत अनुभव और भावनात्मक समर्पण को धार्मिक जीवन का केंद्र बनाया। अब ईश्वर तक पहुँचने के लिए किसी पुरोहित या मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं थी।
- सहअस्तित्व और सहिष्णुता: सगुण और निर्गुण दोनों धाराओं ने धार्मिक सहिष्णुता को बढ़ावा दिया। सगुण धारा ने सभी देवताओं को विष्णु के अवतार मानकर **धार्मिक एकता को बल दिया**, जबकि निर्गुण धारा ने एक ही निराकार ईश्वर की अवधारणा के माध्यम से सभी धर्मों को एक सूत्र में पिरोने का प्रयास किया।

3. साहित्यिक प्रभाव

भक्ति काल को हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग कहा जाता है। इस काल में साहित्य का विकास अपनी चरम सीमा पर था।

- **लोक भाषा का प्रयोग:** कवियों ने संस्कृत के बजाय आम जनता द्वारा बोली जाने वाली भाषाओं, जैसे अवधी (तुलसीदास), ब्रजभाषा (सूरदास), और सधुक्कड़ी (कबीर) का प्रयोग किया। इससे साहित्य जन-जन तक पहुँचा और उसका प्रभाव व्यापक हुआ।
- **नई काव्य शैलियाँ:** भक्ति कवियों ने दोहा, चौपाई, पद, सवैया और छंद जैसी नई काव्य शैलियों को लोकप्रिय बनाया। इन शैलियों ने भावों की अभिव्यक्ति को सरल और प्रभावशाली बनाया।
- **साहित्यिक विरासत:** 'रामचरितमानस' (तुलसीदास), 'सूरसागर' (सूरदास) और 'बीजक' (कबीर) जैसी रचनाएँ आज भी भारतीय साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं। इन ग्रंथों ने न केवल धार्मिक विचारों को प्रस्तुत किया, बल्कि सामाजिक और नैतिक मूल्यों को

भी स्थापित किया।

निष्कर्ष

भक्ति आंदोलन भारतीय इतिहास में केवल एक धार्मिक सुधार आंदोलन नहीं था, बल्कि यह एक व्यापक सामाजिक और सांस्कृतिक क्रांति थी। सगुण और निर्गुण, ये दोनों धाराएँ एक ही सिक्के के दो पहलू थीं। जहाँ सगुण धारा ने पारंपरिक धार्मिक ढाँचों के भीतर ही भक्ति और नैतिकता को स्थापित करने का प्रयास किया, वहीं निर्गुण धारा ने इन ढाँचों को सीधे चुनौती दी और एक समतावादी समाज की नींव रखी।

इस आंदोलन ने सामाजिक असमानताओं, जातिवाद और धार्मिक आडंबरों पर प्रहार किया और प्रेम, भाईचारे और मानवता के मूल्यों को बढ़ावा दिया। सगुण भक्ति ने ईश्वर को लोक-जीवन के निकट ला दिया, जबकि निर्गुण भक्ति ने मनुष्य को अपने भीतर ही ईश्वर को खोजने की प्रेरणा दी। इन दोनों धाराओं ने मिलकर हिंदी साहित्य को समृद्ध किया और लोक भाषाओं को साहित्यिक प्रतिष्ठा दिलाई।

भक्ति आंदोलन की प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है। इसके संदेश, जो सामाजिक समानता, धार्मिक सहिष्णुता और मानवता पर आधारित थे, आधुनिक समाज के लिए भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितने वे मध्यकाल में थे। भक्ति काल की रचनाएँ हमें यह सिखाती हैं कि, वास्तविक धर्म कर्मकांडों में नहीं, बल्कि मन की शुद्धि और परोपकार में निहित है।

संदर्भ

1. द्विवेदी, हजारी प्रसाद. हिंदी साहित्य की भूमिका. राजकमल प्रकाशन, 1940.
2. द्विवेदी, हजारी प्रसाद. कबीर. लोकभारती प्रकाशन, 1942.
3. गार्नर, विलियम. रामचरितमानस: ए ट्रांसलेशन एंड कमेंटरी. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2016.
4. कोसंबी, डी.डी. द कल्चर एंड सिविलाइजेशन ऑफ एनसिएंट इंडिया इन हिस्टोरिकल आउटलाइन. रुटलेज, 1965.
5. राय, अमिताभ. भक्ति मूवमेंट इन इंडिया: एन ओवरव्यू. अटलांटिक पब्लिशर्स, 2009.
6. शुक्ल, रामचंद्र. हिंदी साहित्य का इतिहास. नागरी प्रचारिणी सभा, 1929.
7. ताराचंद. इंफ्लुएंस ऑफ इस्लाम ऑन इंडियन कल्चर. द इंडियन प्रेस, 1922.
8. वर्मा, धीरेंद्र. हिन्दी साहित्य का इतिहास. राजकमल प्रकाशन, 1995.
9. वर्मा, रामकुमार. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास. लोकभारती प्रकाशन, 1938.
10. राय, रामवृक्ष बेनीपुरी. कबीर: व्यक्तित्व और विचार. राजकमल प्रकाशन, 1952.
11. राय, विनय. सूरदास: जीवन और काव्य. प्रभात प्रकाशन, 2005.